International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(4): 37-38

**ISSN: 2394-7519**
IJSR 2015; 1(4): 37-38
© 2015 IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 11-04-2015
Accepted: 30-04-2015

**धर्मेन्द्र कुमार**
शोधार्थी, संस्कृत–विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

**Correspondence**
**धर्मेन्द्र कुमार**
शोधार्थी, संस्कृत–विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

# ''प्रारम्भिक यज्ञों में सादगी तथा सात्त्विकता''

## धर्मेन्द्र कुमार

**यज्ञ शब्द का अर्थः–**
'यज्ञ' शब्द 'यज् देवपूजा संगति करणदानेषु'[1] इस धातु से 'नङ्'[2] प्रत्यय होकर सिद्ध होता है। 'यज्' धातु के देवपूजा सङ्गतिकरण और दान ये तीन अर्थ होते हैं। 'देव' शब्द पाणिनीय निर्देशानुसार बहुवर्थक है और पूजा का अर्थ है 'सत्कार' या यथा–योग्य व्यवहार। इसलिए 'देव' चाहे जड प्राकृतिक तत्व वा शक्तियाँ हों चाहे चेतन, सभी के साथ यथायोग्य व्यवहार करना देवपूजा कहलाती है। सङ्गतिकरण का तात्पर्य है–किन्हीं पदार्थों का यथोचित मात्रा में संयोग करना, जिससे प्राणियों का कल्याण एवं उत्कर्ष हो, श्रेष्ठ धर्मात्मा विद्वानों का सत्संग करना आदि। दान का तात्पर्य है–स्वयमुपार्जित धन–सम्पत्ति–विद्या आदि को प्राणिमात्र के कल्याण के लिए प्रयुक्त करना। इस प्रकार 'यज्ञ' शब्द का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। इसी दृष्टि से स्वामी दयानन्द सरस्वती ने यजुर्वेद 1/2 के भाष्य में लिखा है– 'धात्वर्थ के योग से यज्ञ का अर्थ तीन प्रकार का होता है। एक–देव पूजा अर्थात् विद्याज्ञान और क्रम के अनुष्ठान से वृद्ध देव=विद्वानों का ऐहिक और पारलौकिक सुख के सम्पादन के लिए सत्कार करना। दूसरा=अच्छे प्रकार पदार्थों के गुणों के मेल–विरोध ज्ञान की संगति से शिल्पादि विद्या का प्रत्यक्षीकरण, तथा नित्य विद्वानों के समागम का अनुष्ठान/तीसरा–विद्या सुख धर्मादि शुभ गुणों का नित्य दान करना।'[3]

**प्रारम्भिक यज्ञः–**
प्रारम्भ में यज्ञों की कल्पना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण दृष्टि से वैज्ञानिक आधार पर की गयी थी, अतः प्रारम्भ में कल्पित यज्ञों का आधिदैविक जगत् के साथ साक्षात् सम्बन्ध था। यथा–अग्निहोत्र का अहोरात्र के साथ दर्शपूर्णमास का कृष्णपक्ष और शुक्ल पक्ष के साथ, तथा चातुर्मास्य का तीनों ऋतुओं के साथ। अग्निहोत्र और दर्शपौर्णमास की आधिदैविक व्याख्या शतपथ के ग्यारहवें काण्ड में प्राप्त होती है। चातुर्मास्य के लिए ब्राह्मण–ग्रन्थों में कहा गया है– 'भैषज्ययज्ञा वा एते यच्चातुर्मास्यानि। तस्मादृतुसन्धिषु प्रयुज्यन्ते। ऋतुसन्धिषु हि व्याधिर्जायते।'[4]
महाभारत में अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमास और चातुर्मास्य इन तीन यज्ञों को ही प्राचीन यज्ञ कहा गया है–यथा–

> **दर्शं च पौर्णमासं च अग्निहोत्रं च धीमतः।**
> **चातुर्मास्यानि चैवासन् तेषु धर्म सनातनः।**[5]

**सादगी तथा सात्त्विकताः–**
प्रारम्भ में जिन यज्ञों की कल्पना की गई, वे यज्ञ अत्यन्त सादे तथा सात्त्विक थे। उनमें बाह्याडम्बर (दिखावा), अवैदिक विचारों का मिश्रण तथा मांस आदि तामसिक पदार्थों का किंचिद् लेशमात्र सम्बन्ध नहीं था। प्रस्तुत शोध–लेख में इसके निदर्शन के लिए शोधार्थी द्वारा दो प्रमाण उपस्थापित किये जा रहे हैं–

**प्रथमः–**
'यज्ञो हि वा अन्नः। तस्मादनस एव यजूंषि सन्ति न कोष्ठस्य, न कुम्भ्यै। भस्त्रायै ह स्मर्षयो गृह्णन्ति। तद् वृषीन् प्रति भस्त्रायै यजूंष्यासुः। तान्येतर्हि प्राकृतानि।'[6]
अर्थात् अन्न से भरे शकट (गाड़ी) से ही दर्शपौर्णमासादि की छवि का ग्रहण करे। शकट ही यज्ञ है। इसलिए हविग्रहण के याजुष मन्त्र शकट–सम्बन्धी ही हैं। कोष्ठ (अन्न रखने का कोठा=कुसूल) या भस्त्रा (वस्त्र वा चमड़े की थैली, जैसी आटा आदि रखने के लिए पहाड़ी वर्त्तते हैं) सम्बन्धी नहीं हैं। पुरातन ऋषि भस्त्रा से हवि का ग्रहण करते थे। उन ऋषियों के लिए ये ही हविग्रहण के याजुष मन्त्र

भस्त्रा सम्बन्धी थे। इसलिए ये याजुष मन्त्र सामान्य है कहीं पर भी इनका विनियोग किया जा सकता है।

यहाँ पर ध्यातव्य है कि मनुस्मृति[7] में ब्राह्मण को कुसूल धान्यक, कुम्भीधान्यक, त्र्यहैहिक और अश्वस्तनिक वृत्ति से निर्वाह करने का विधान किया है। ऐसा ब्राह्मण गाड़ी भरकर अन्न वेदि के समीप कैसे ला सकता है। पुराने ऋषियों द्वारा भस्त्रा से हवि ग्रहण का विधान इसीलिए किया गया था।

प्रस्तुत उद्धरण से दो बातें स्पष्ट होती हैं– एक याज्ञिक क्रियाओं में उत्तरोत्तर परिवर्तन हुआ है। निरुक्त[8] में भी– ''असावादित्य (वैश्वानरः) इति पूर्वे याज्ञिकाः'' लिखकर पूर्व याज्ञिकों की क्रिया का उल्लेख किया गया है। 'पूर्व' विशेषण से स्पष्ट है कि निरुक्त में दर्शाई गयी याज्ञिक क्रिया यास्क के समय उस रूप में नहीं होती थी। दूसरी पुराकाल में यज्ञों में बाह्याडम्बर नहीं था, उत्तरोत्तर रजस्तम की वृद्धि हुई। पौर्णमासेष्टि में तीन प्रधानाहुतियों के लिए केवल 12 मुठ्ठी जौ या व्रीहि (धान) की आवश्यकता होती है। इतने थोड़े से अन्न लाने का क्या प्रयोजन है? इसे बाह्याडम्बर (अपनी सम्पन्नता का दिखावा) ही तो कहा जायेगा। इसीलिए प्राचीन ऋषि अपनी अनाज रखने की कपड़े वा चमड़े की थैली अथवा घड़े से ही हविग्रहण करते थे। उत्तरकाल में शकट से हविग्रहण का विधान स्वीकृत होने पर भी साधारण याज्ञिकों द्वारा शकट भर अन्न लाना असम्भव होने से शकट से हविग्रहण का प्रयोजन केवल अदृष्ट की उत्पत्ति मानकर एक वितस्ति भर प्रमाण की गाड़ी बनाकर उससे हविर्द्रव्य का स्पर्श मात्रा करके कार्य चलाने लगे। इसी प्रकार सोमयाग के समय सम्पन्न किये जाने वाले हविर्धानमण्डप का निर्माण पहले ही कर लेते हैं। यागकाल में स्पर्शमात्र करके कार्य चलाते हैं।

**द्वितीयः–**

प्राचीन यज्ञ अवैदिक तत्त्वों से सर्वथा रहित थे। परन्तु उत्तरकाल में दर्शपौर्णमास सदृश विशुद्ध यागों में भी अवैदिक विचारों का सम्मिश्रण हो गया। इसका भी यहाँ एक उदाहरण द्रष्टव्य है– वैदिक मन्तव्य के अनुसार पुत्र और पुत्री में किसी प्रकार का भेदभाव=पुत्र के प्रति उत्कृष्ट भावना अथवा पुत्री के प्रति हीन भावना नहीं थी। यास्क मुनि ने निरुक्त[9] में 'अङ्गादङ्गात् संभवसिः' मन्त्र और 'अविशेषेण पुत्राणांदायः, मानव श्लोक को उद्धृत करके इस मत की पुष्टि की हैं परन्तु श्रौत यज्ञों में पुत्री के प्रति हीन भावना के निदर्शक वचन पठित हैं, जिन्हें यजमान प्रयाजसंज्ञक याग के पश्चात् आशीः के रूप में पढ़ता है। यथा–प्रथम प्रयाज के पश्चात्– 'एका मम एका तस्य योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः[10], अर्थात् मेरे एक पुत्र होवे, और जो मुझसे द्वेष करता है वा मैं जिससे द्वेष करता हूँ उसके एक पुत्री होवे।

इस प्रकार अपने लिए पुत्र की और द्वेषी के यहाँ पुत्री होने की कामना उत्तरोतर द्वितीय तृतीय चतुर्थ प्रयाजों के आशीः वचनों में क्रमशः दो–तीन चार रूप में बढ़ जाती है। और पंचम प्रयाज के अन्त में अपने लिए पाँच पुत्रों की कामना, और शत्रु के लिए 'न तस्य किंचन्' अर्थात् कुछ न होने की आशीः चाहता है।

वस्तुतः इस प्रकार के पुत्र–पुत्री के भेद का प्रादुर्भाव बहुत उत्तरकाल में हुआ था। इस भेदभाव की परिणिति उत्तरकाल में सद्यः प्रसूत पुत्री की हत्या के रूप में हुई। वर्तमान में भी 'पुत्रजीवक' को लेकर समाज में उठापटक चल रही है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'यज्ञ' शब्द का जो अर्थ प्राचीन ऋषियों को अभिप्रेत था वे उसी अर्थ में ही उसका ग्रहण करते थे परन्तु उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि प्रकारान्तर में यज्ञों में निहित सादगी तथा उनकी सात्त्विकता का ह्रास देखने को मिलता है।

**सन्दर्भ सूची**


1. धातुपाठ 1/728
2. यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् अष्टा. 3/3/90
3. धात्वर्थाद् यज्ञार्थस्त्रिविधो भवति...यजु.भा. 1/2
4. कौषीतकि ब्राह्म. 5/1
5. महाभारत शान्ति पर्व 269/20
6. शतपथ ब्राह्मण–1/1/2/7
7. मनुस्मृति 4/7
8. निरूक्त 7/23
9. वही 3/4
10. शतपथ ब्राह्मण 1/5/4/12, कात्यायन श्रोत 3/3/3, आपस्तम्ब श्रौत 4/9/4